ऑलिव रिडली और उड़ीसा

दीपक वर्मा

पक्षियों-जीवों द्वारा हज़ारों-हज़ार किलोमीटर दूर प्रवास करने के कई उदाहरण हैं। इन्हीं में से एक है 'ऑलिव रिडली' समुद्री कछुआ जो शायद हज़ारों साल से उड़ीसा के तट पर प्रजनन करने और अण्डे देने के लिए आता रहा है। लेकिन आज भी इसके बारे में हमारी जानकारी अधूरी है।

करीब आठ-नौ साल पहले की बात है, मैं और मेरा वीडियो कैमरामैन, सुनील करीब दो-तीन दिन से उड़ीसा के पूर्वी तट पर स्थित गाँव रुसीकुलिया में डेरा डाले हुए थे। गाँव वालों की मेहरबानी से सोने के लिए गाँव से थोड़ी दूर बना एक कमरा मिल गया था।

पौ फटने से पहले ही गाँव के पास से बहती नदी पर टेढ़ी-मेढ़ी बल्लियों से बने एक पुल को किसी तरह पार कर दूसरी तरफ दिशा-मैदान को जाते थे। दिन गाँव में और गाँव से करीब एक-डेढ़ किलोमीटर दूर समुद्र तट पर ही बीतता। शाम को वापस आते और रात में फिर समुद्र तट पर... इस उत्सुकता के साथ कि क्या आज रात ऑलिव रिडली के रेत में दबे अण्डे

फूटेंगे और क्या उनसे बच्चे बाहर निकलेंगे। थोड़ी देर बाद शायद आप भी इस घटना का रोमांच महसूस कर पाएँगे।

दो रातें तो यूँ ही निकल गई थीं। लेकिन आज की रात को लेकर इन समुद्री कछुओं के संरक्षण में लगे गाँव के युवकों में एक विश्वास-सा था। प्रकृति के अध्ययन में लगे लोगों में आप हमेशा इस गुण को पाते हैं - उनमें आभास करने की क्षमता विकसित हो जाती है जिसे तार्किक तौर पर समझना सम्भव नहीं होता।

समुद्री कछुए

दुनिया के महासागरों में सात प्रजाति के कछुए मिलते हैं – लैदरबैक, कैम्प रिडली, फ्लैट बैक, हॉकबिल, ग्रीन, ऑलिव रिडली और लॉगरहैड कछुए। इनमें से पाँच प्रजातियाँ भारत के समुद्रों और तटीय इलाकों में भी मिलती हैं जिनमें ऑलिव रिडली भी एक है।

ऑलिव रिडली, सभी प्रजातियों में सबसे छोटा कछुआ माना जाता है। इसकी लम्बाई करीब दो फुट तक पहुँचती है और वज़न करीब 40 से 50 किलोग्राम। इसके कवच का रंग काई के समान गाढ़ा हरा होने की वजह से ही इसका नाम ऑलिव रिडली पड़ा। वैसे 'ऑलिव' यूरोप में मिलने वाला एक गाढ़े हरे रंग का फल भी होता है।

यूँ तो समुद्री कछुए साल का

लैदरबैक,

कैम्प रिडली

फ्लैट बैक,

हॉकबिल

ग्रीन

लॉगरहैड

अधिकतम हिस्सा समुद्र में बिताते हैं लेकिन अण्डे देने के लिए उन्हें पानी से बाहर रेत पर आना होता है। और यहीं हमें उनकी एक अद्‌भुत क्षमता के दर्शन होते हैं।

उनमें उस तट को पहचानने की अद्‌भुत प्राकृतिक योग्यता होती है जहाँ उन्होंने पहली बार अण्डे दिए थे। साल का एक बड़ा हिस्सा समुद्र के सुदूरस्थ कोनों में बिताने के बाद वे अपनी इस अद्‌भुत नाविकीय क्षमता का प्रयोग करते हुए बार-बार अण्डे देने के लिए उस तट पर लौटते रहते हैं। ऐसा माना जाता है कि ज़मीन से नाता सिर्फ मादा कछुए का ही होता है। नर अण्डे से निकलने के बाद कभी दोबारा ज़मीन पर नहीं लौटता। वैज्ञानिक यह भी मानते हैं कि हो सकता है समुद्री कछुआ जिस तट पर जन्म लेता है, परिपक्व होने के बाद वह उसी तट को अण्डे देने के लिए भी चुनता हो।

यूँ तो ऑलिव रिडली भारत के सभी समुद्री तटों पर छुटपुट तौर पर अण्डे देने के लिए आते रहते हैं लेकिन इनका सबसे बड़ा प्रजनन स्थल है, उड़ीसा के तटीय क्षेत्र और उनमें से भी तीन अत्यन्त छोटे तट - गहिरमाथा, देवी नदी और रुसीकुलिया के समुद्री तट।

रिडली का प्राकृतिक चक्र

रिडली के व्यवहार और जीवनकाल के बारे में हमें अभी भी बहुत कुछ नहीं

मालूम - जैसे कि वे समुद्र में कहाँ-कहाँ की और कितनी दूर की यात्रा करते हैं? लेकिन यह पक्के तौर पर मालूम है कि करीब छः माह ये उड़ीसा के तटीय समुद्र में बिताते हैं। अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर के दौरान अगर आप उड़ीसा के तटों से नाव लेकर समुद्र में कुछेक किलोमीटर भीतर जाएँ तो आपको नर और मादा रिडली, समुद्र की सतह पर संसर्गरत मुद्रा में तैरते मिल जाएँगे। यह उनका पारम्परिक प्रजनन स्थल है। इसी वजह से नवम्बर-दिसम्बर के महीने में उड़ीसा का समुद्र इन कछुओं से भरा होता है। और यही जमावड़ा उनकी असमय मृत्यु का कारण भी बनता है।

दरअसल, कछुए फेफड़ों से साँस लेते हैं। थोड़े-थोड़े समय के बाद साँस भरने के लिए वे समुद्र की सतह पर आते रहते हैं। ऐसे में अगर वे नीचे फैले मछली के जाल में फँस जाएँ तो साँस लेने के लिए ऊपर नहीं आ पाते और असमय ही काल का ग्रास बन जाते हैं। एक अनुमान के अनुसार, पिछले दस साल में, एक लाख से ज़्यादा कछुए मछली के जाल में फँसकर दम तोड़ चुके हैं।

वैज्ञानिक ऑलिव रिडली के भविष्य को लेकर काफी चिन्तित हैं। किसी भी प्रजाति की संख्या में बढ़ोत्तरी के लिए नर और मादा की संख्या का एक निश्चित अनुपात ज़रूरी है। लेकिन रिडली कछुओं की संख्या का सही अनुमान अभी तक नहीं लगाया जा सका है। वहीं यह भी माना जाता है कि कछुओं के हज़ार बच्चों में से करीब एक ही यौवन तक पहुँच पाता है और आगे प्रजनन के लिए उड़ीसा के तट पर आता है। इस नाते एक भी कछुए की मृत्यु प्रकृति के लिए बहुत बड़ा नुकसान है। वैज्ञानिक अनुमानों के अनुसार, एक कछुआ प्रजनन की अवस्था तक पहुँचने के लिए 30 से 40 साल तक ले लेता है। इसीलिए इनके भविष्य को लेकर खतरा बहुत बड़ा है।

एक अद्‌भुत रात - अरीबादा

फरवरी के शुरुआती दिनों की बात है - वैज्ञानिकों और कछुओं के संरक्षण में लगे युवकों के बीच उत्सुकता अपने चरम पर थी - सब कयास लगा रहे थे कि इस बार कछुए अण्डे देने के लिए कौन-सा तट चुनेंगे।

यह पाया गया है कि पूरे उड़ीसा तट पर स्थित तीन अत्यन्त छोटे समुद्री तट इन कछुओं की पसन्दीदा जगह हैं। एक है गहिरमाथा, दूसरा है देवी नदी का मुहाना और तीसरा रुसीकुलिया नदी का मुहाना। ऑलिव रिडली यही तीन छोटे टुकड़े क्यों चुनते हैं, इसके बारे में ठीक-ठीक कुछ कहा नहीं जा सकता। लेकिन अचानक एक रात ये बहुत बड़ी संख्या में समुद्र से निकलकर तट पर आकर अण्डे देना शुरू कर देते हैं। कई बार तो इनकी संख्या हज़ारों में पहुँच जाती है। इतनी अत्यधिक संख्या में अण्डे

फोटोग्राफ: आमोद कारखानिस

देने की इस घटना को 'अरीबादा' कहा जाता है।

तो मैं दिल्ली से उड़ीसा जाने की तैयारियों में लगा था कि 'अरीबादा' देख पाऊँगा। इसी बीच, एक रात उड़ीसा में मौजूद मेरी टीम ने खबर की कि 'अरीबादा' शुरू हो चुका है और उन्होंने उसका फिल्मांकन भी शुरू कर दिया है। अब मेरे जाने का कोई फायदा न था क्योंकि तीन दिन तो मुझे पहुँचने में ही लग जाते और तब तक 'अरीबादा' समाप्त भी हो चुका होता। आप सोच सकते हैं कि इस घटना को अपनी आँखों से न देख पाने का अफसोस कितना तगड़ा रहा होगा।

खैर...

अचानक मध्य रात्रि को मादा कछुए, समुद्र की गहराइयों से निकलकर, लहरों पर तैरते हुए तट के पास आना शुरू कर देते हैं। पहले कुछ आते हैं, फिर कुछ और आते हैं और धीरे-धीरे इनके आने की संख्या बढ़ती जाती है। थोड़ी देर में हर लहर सैकड़ों कछुओं को लाने लगती है और पूरा का पूरा तट कछुओं से भर जाता है। ज़रा कल्पना कीजिए, हज़ारों दो फुटे, 50 किलो वज़नी कछुए एक छोटे-से तट पर।

समुद्री कछुए पानी में तैरने के

लिए अनुकूलित होते हैं इसीलिए इनके पैर न होकर चप्पू की तरह फ्लिपर होते हैं। लेकिन दुविधा यह है कि इन्हें अण्डे देने के लिए ज़मीन पर आना पड़ता है। पानी से निकलने के बाद बहुत धीरे-धीरे मादा अपने चप्पुओं की मदद से खिसकती हुई तट पर आती है, और अपना घोंसला बनाने के लिए सही जगह तलाश करती है। ज़मीन पर चलने के लिए अनुकूलित न होने की वजह से इनकी सारी गतिविधियाँ अत्यन्त धीमी गति से होती हैं जिसमें काफी दम लगता है। इसी बीच अगर इसे किसी तरह का संशय हो जाए तो बिना अण्डे दिए वापस भी चली जाती है। लेकिन अगर उसने एक बार अण्डे देने के लिए गड्ढा खोदना शुरू कर दिया तो उसे अण्डे देकर ही जाना पड़ता है, इस प्रक्रिया पर उसका नियंत्रण खत्म हो जाता है। अपने पिछले फ्लिपर की मदद से वह डेढ़ से दो फुट गहरा गड्ढा खोदती है और फिर उसमें अण्डे देना शुरू कर देती है। मादा एक बार में सौ से डेढ़ सौ तक अण्डे दे सकती है। अण्डे देने के बाद वह गड्ढे को भरती है और फिर पूरे शरीर को हिला-हिलाकर ज़मीन को पक्का करती है - शायद इस कोशिश में कि वहाँ अण्डे होने का हर निशान मिटा सके। इस पूरी प्रक्रिया में उसे एक से दो घण्टे तक लग सकते हैं। ज़रा कल्पना कीजिए उस नज़ारे की – जहाँ तक आप नज़र दौड़ाएँ, कछुए कहीं गड्ढा खोदते, कहीं अण्डे देते और कहीं गड्ढे को बन्द करने के लिए अपने शरीर को हिलाते हुए दिखाई दें। अण्डे देने के बाद थकी-हारी मादा धीरे-धीरे खिसकती हुई लहरों में समा जाती है।

इस तरह सामूहिक घोंसला बनाने और अण्डे देने का गुण जीवजगत में काफी दुर्लभ है। इस नाते यह सवाल उठना वाजिब है कि 'अरीबादा' का रिडली के लिए क्या फायदा है?

एक वैज्ञानिक नज़रिया यह है कि कछुओं के अण्डे देने की जगह के आस-पास पक्षी भी बड़ी तादाद में मौजूद होते हैं। जब कछुए अलग-अलग होकर अण्डे देते हैं तो बहुत बड़ी तादाद में अण्डे परभक्षियों का शिकार हो जाते हैं और इस नाते उनके पनपने की दर कम हो जाती है। वहीं 'अरीबादा' के समय जब बहुत बड़ी संख्या में कछुए एक साथ घोंसला बनाते और अण्डे देते हैं तो वे परभक्षियों की संख्या और भूख के मुकाबले प्राकृतिक तौर पर फायदे में होते हैं और उनके अण्डों के बचने की सम्भावना बढ़ जाती है।

लेकिन 'अरीबादा' के दौरान छोटे-से तट पर कछुओं का दबाव इतना बढ़ जाता है कि कई बार कछुए पहले बने घोंसले को ही खोदकर दोबारा अण्डे दे देते हैं। कई घोंसले इस वजह से भी बर्बाद हो जाते हैं।

'अरीबादा' के बाद अब इन्तज़ार

टरटल, टॉरटॉइज़, टैरापिन

सरीसृपों का एक प्रभाग (division) है, चीलोनियंस (chelonians) जिसमें टरटल, टॉरटॉइज़ (टॉरटॅस) और टैरापिन आते हैं। टरटल और टॉरटॉइज़ के बीच अन्तर शब्दिक ज़्यादा जबकि जीव विज्ञान वर्गीकरण सम्बन्धी कम ही है। सामान्यतः टरटल पानी के अन्दर या उसके नज़दीक रहते हुए पानी में तैरने और साँस लेने के लिए अनुकूलित होते हैं। टॉरटॉइज़ मूलतः सूखे इलाकों में रहते हैं और शरीर में ही स्वयं के लिए पानी संचित रखते हैं। इनका शरीर रेतीली ज़मीन पर चलने के लिए अनुकूलित होता है।

जीवविज्ञान की दृष्टि से टॉरटॉइज़ टरटल का ही एक प्रकार है, इसका मतलब हुआ टॉरटॉइज़ भी टरटल ही हैं लेकिन सारे टरटल, टॉरटॉइज़ नहीं होते। टरटल और टॉरटॉइज़ के बीच आने वाले जीवों के लिए, टैरापिंस शब्द का प्रयोग किया जाता है। टैरापिंस दलदली क्षेत्रों में पाए जाते हैं या पानी में अपने जीवन की शुरुआत कर अन्ततः ज़मीन की ओर चले जाते हैं।

टरटल स्वच्छ पानी, समुद्र, खारे पानी के तालाबों या दलदली स्थानों में पाए जाते हैं। समुद्री टरटल तैरने के लिए अपने फ्लिपर का प्रयोग करते हैं जिसकी मदद से ये ऊपर-नीचे गति करते हुए आगे बढ़ते हैं। टरलट की पीठ टॉरटॅस की तुलना में अधिक चिकनी होती है और वे अपने जीवन का अधिकांश समय पानी के भीतर ही बिताते हैं। ये संसर्ग और अण्डे देने का काम भी पानी के अन्दर या समुद्र के तटों पर ही करते हैं।

टॉरटॉइज़ पूरा समय पानी के बाहर ही रहते हैं और पानी के अन्दर स्वयं को साफ करने या पानी पीने के लिए ही जाते हैं। दरअसल, ये गहरी जल धाराओं में डूब भी सकते हैं। इनके पैर कठोर, शल्कयुक्त और खुरदरे होते हैं ताकि ये चट्टानों और रेत पर आसानी से चल सकें। टॉरटॉइज़ के नाखून सख्त होते हैं जो इन्हें गड्ढा खोदने में मदद करते हैं जिसका उपयोग ये गर्मियों में, सोने के लिए करते हैं। टॉरटॉइज़ मुख्यतः शाकाहारी होते हैं जो कैक्टस, छोटी झाड़ियों और ऐसे पौधों को खाते हैं जिनमें नमी की मात्रा अधिक होती है। इनका खोल गोल गुम्बदनुमा होता है जिसमें टॉरटॉइज़ मुसीबत को भाँपकर अपने सिर और पैरों को छिपा लेते हैं। स्थलीय टॉरटॉइज़ के पैर कठोर और छोटे होते हैं। सामान्यतः ये अपनी धीमी चाल के लिए जाने जाते हैं। ये दूरियों को टुकड़ों में तय करते हैं क्योंकि इनके भारी-भरकम खोल इन्हें लम्बे डग भरने से रोकते हैं।

टॉरटॉइज़

-विभिन्न स्रोतों से संकलित।

करना होगा पचास दिन तक। अण्डों को परिपक्व होने और फूटने के लिए इतने समय की ज़रूरत होती है।

कुछेक दिन पहले

रुसीकुलिया - जहाँ 'अरीबादा' हुआ था और अण्डों से बच्चे निकलने वाले थे - पहुँचने से थोड़ा पहले मैं ऑलिव रिडली की एक और पसन्दीदा जगह, देवी नदी के मुहाने पर स्थित उड़ीसा के समुद्री तट पर था, एक अद्‌भुत प्रयोग देखने के लिए।

समुद्री कछुओं की अन्य प्रजातियों पर हुई शोध से पता चलता है कि कछुओं के प्रवास काल को उनके अलग-अलग समय के प्रवास स्थलों के आधार पर विभाजित किया जा सकता है। जैसे कि मादा और बच्चों का ज़मीनी दायरा, समुद्र में वह स्थान जहाँ बच्चे विकसित होने के दौरान खाना ढूँढ़ते हैं, परिपक्व होने के बाद वह जगह जहाँ कछुए समुद्र के भीतर भोजन की तलाश में भटकते हैं, और तटों के पास के स्थान जहाँ वे प्रजनन काल के दौरान काफी वक्त बिताते हैं।

लेकिन रिडली कछुए के बारे में प्रजनन काल के अलावा हमें उसके अन्य प्रवासीय स्थलों की जानकारियाँ न के बराबर हैं। हमें नहीं मालूम कि छः महीने उड़ीसा के तट पर बिताने के बाद वे समुद्र में कहाँ चले जाते हैं, कितनी लम्बी दूरी की यात्रा करते हैं। इन जानकारियों की मदद से न सिर्फ उनके व्यवहार को समझने में मदद मिलती है बल्कि संरक्षण की गतिविधियों को भी कारगर ढंग से संचालित किया जा सकता है।

प्रवासी जीवों के प्रवास के रास्तों के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक आम तौर पर धातु के बिल्लों या अँगूठी का इस्तेमाल करते हैं जिन्हें 'टैग' भी कहते हैं। प्रत्येक टैग पर उस तारीख व स्थान की जानकारी होती है जब उसे लगाया गया था। साथ ही, सम्बन्धित वैज्ञानिक का नाम और पता होता है। अगर वह जीव कहीं और पकड़ा जाता है तो पता चल जाता है कि वह कहाँ से आया है। लेकिन इस विधि से यह पता नहीं चलता कि सम्बन्धित जीव ने उस स्थान तक पहुँचने के लिए कौन-सा रास्ता चुना था। ट्रांसमीटर और उपग्रहों के आने के बाद यह बाधा भी हट गई - लेकिन मँहगी होने की वजह से इस तकनीक का चलन आम नहीं हो पाया है।

तो देवी नदी के तट पर वैज्ञानिक बैटरी चलित चार रेडियो ट्रांसमीटर लेकर आए थे जिन्हें चार कछुओं की पीठ पर चिपकाना था।

मध्य अप्रैल का समय चुनने की वजह थी कि यह उड़ीसा के तट पर कछुओं के प्रवास का लगभग अन्तिम समय होता है। तो अधिक सम्भावना थी कि ट्रांसमीटर धारी कछुए समुद्र के भीतर अपनी यात्रा पर निकल जाएँगे और प्रवास के रास्तों की जानकारी तुरन्त मिलना शुरू हो जाएगी।

कछुओं पर लगाए जाने वाले ट्रांसमीटर का वज़न (बैटरी समेत) आधा किलो से कम था। यह इस तरह डिज़ाइन किया गया था कि जब कछुआ समुद्र के भीतर होगा तो यह बन्द रहेगा, जैसे ही कछुआ समुद्र की सतह पर आएगा यह चालू हो जाएगा और उस जगह से सम्बन्धित अक्षांश की जानकारी प्रेषित कर देगा। उपग्रह के माध्यम से इन सिग्नलों को पकड़कर नक्शे पर उस स्थान को मार्क किया जा सकता है। इस तरह जहाँ-जहाँ कछुआ जाएगा उसके प्रवासीय रास्ते की खोज होती जाएगी। अगर सब कुछ ठीक-ठाक चले तो एक ट्रांसमीटर करीब एक साल काम करता है।

पूरी रात कार्यकर्ता तट पर घूमते रहे कि कोई कछुआ प्रजनन करता मिल जाए। पर मानो कछुओं ने तय कर लिया हो कि आज तो तट पर आएँगे ही नहीं। इसी आपात स्थिति से निपटने के लिए प्रयोग की रात से एक-दो दिन पहले ही चार कछुओं को पकड़ कर रखा गया था। अल सुबह तय किया गया कि अब इन्हीं कछुओं पर ट्रांसमीटर लगाए जाएँ।

इन चार कछुओं में से एक का नाम चन्द्रा रखा गया, उड़ीसा वन विभाग के एक वैज्ञानिक चन्द्रशेखर कार के नाम पर। इन्होंने कछुओं के अध्ययन और संरक्षण को लेकर काफी काम किया है।

आने वाले कुछ महीनों तक इन कछुओं पर लगे ट्रांसमीटर से जानकारियाँ मिलती रहीं। इनमें से तीन तो काफी समय तक उड़ीसा के तट से 50 से 200 किलोमीटर के बीच ही बने रहे। एक कछुआ अगस्त के महीने तक श्रीलंका के तट के पास पहुँच चुका था।

इसके बाद सिग्नल नहीं मिले जिसका मतलब था कि या तो ट्रांसमीटर उनकी पीठ से गिर गए या कछुए जाल में फँस कर मर गए और किसी बड़े परभक्षी का शिकार हो गए।

सिर्फ चार महीने में श्रीलंका तक पहुँचने वाले कछुए ने यह तो इंगित

ऑलिव रिडली

ऑलिव रिडली टरटल (लेपिडोचीलिस ऑलिवेसिया/Lepidochelys olivacea) वर्ग - सरीसृप, ऑर्डर - टेस्ट्युडीन्स और कुल - चीलोनिडी के अन्तर्गत आता है। इसे पेसिफिक रिडली के नाम से भी जाना जाता है जो समुद्री कछुओं की सबसे छोटी प्रजातियों में से एक है।

ऑलिव रिडली अधिकतर हिन्द-प्रशान्त और अन्ध महासागर में पाए जाते हैं। ये सर्वभक्षी होते हैं जो केंकड़े, श्रिम्प, लोब्सटर, समुद्री घाँस, शैवाल, समुद्री शल्कयुक्त जीव और छोटे अकशेरुकी प्राणियों को खाना पसन्द करते हैं। भोजन की तलाश में जहाँ ये पानी की ऊपरी सतह पर आ जाते हैं वहीं ये 150 मीटर की गहराई तक भी जा सकते हैं।

कर ही दिया कि वे प्रजनन के लिए वापस आने से पहले कितनी दूर तक की यात्रा करते हैं।

रुसीकुलिया की वह रात

वह रात मेरे जीवन की एक अविस्मरणीय घटना है। थोड़ा अँधेरा होते-होते हम समुद्र तट की ओर चल पड़े जहाँ हज़ारों अण्डे रेत के नीचे दबे पड़े थे। ऊपर से रेत बिलकुल सामान्य लग रही थी।

रात के नौ से दस बजे का वक्त होगा - समुद्र तट की ओर बढ़ते हुए हमने रुसीकुलिया नदी को पार किया, रास्ते में पानी की एक पतली धारा के पास दो कार्यकर्ताओं के मुँह से अचानक निकला - कोइंचो... शायद उड़िया में कछुआ... दौड़ के दोनों ने दो काले-से, अत्यन्त छोटे जीवों को हाथ में उठा लिया - उनके चप्पू जैसे छोटे-से फ्लिपर हवा में हिल रहे थे। हो सकता है कि किसी कछुए ने काफी दूर आकर घोंसला बनाया हो जिसमें से ये निकल कर आ रहे थे।

लग रहा था कि शायद आज की रात ही वह रात है जब प्रकृति का एक अद्‌भुत नज़ारा देखने को मिलेगा।

कार्यकर्ता तट पर पतली-पतली टॉर्च लिए घूम रहे थे। दरअसल, जिस तरह परभक्षी अण्डे खाने आते हैं वैसे ही वे नवजात कछुओं को भी खाने के लिए यहाँ-वहाँ घूमते रहते हैं।

फोटोग्राफ: आमोद कारखानिस

फोटोग्राफः आशुतोष गुर्जर

कार्यकर्ताओं का काम था उन्हें बचाना।

अचानक टॉर्च की रोशनी में रेत में कुछ हलचल-सी दिखाई दी। ध्यान से देखने पर पता चला कि एक बच्चा बाहर निकलने की कोशिश कर रहा है - कार्यकर्ताओं ने चारों ओर एक बड़ा-सा गोला बना दिया और एक बॉस की खपच्ची गाड़ दी। इसका मतलब था कि यहाँ रेत के भीतर घोंसला है।

धीरे-धीरे तट पर सैकड़ों घोंसले फूटने लगे - ज़रा कल्पना कीजिए, कितनी चकित करने वाली बात है कि जिस रेत पर आप चल रहे हैं वहाँ से अचानक कुछ बाहर आने की कोशिश कर रहा हो।

इन बच्चों को खुद ही रेत से बाहर निकलना होता है। यह इनकी ज़िन्दगी का एक बड़ा ही महत्वपूर्ण हिस्सा है।

मैं दम साधे एक फूटते हुए घोंसले को कैमरे में कैद करने के लिए रेत पर लेटा-सा हुआ था। अचानक ऐसा लगा मानो मेरे नीचे से और शरीर के ऊपर से कुछ नन्हीं-नन्हीं चीज़ें सरक रही हों। ध्यान से हिला तो पाया कि मैं जहाँ लेटा था, ठीक उसके बगल में ही एक घोंसला फूट पड़ा था। सोचिए एक घोंसले से सौ-डेढ़ सौ कछुए के बच्चे निकलते हैं - सामने बाधा आ गई - उन्हें तो समुद्र की ओर जाना है - तो चल पड़े बाधा पर चढ़ाई करने!

पूरा का पूरा तट काले, चमकते नवजात कछुओं से भर जाता है।

फोटोग्राफः आशुतोष गुर्जर

एक और मज़ेदार बात - कछुओं में लिंग का निर्धारण क्रोमोसोम से नहीं होता। रेत में दबे रहने के दौरान भीतर का तापमान इस बात का निर्धारण करता है कि कितने बच्चे नर होंगे और कितने मादा। नवजातों को देखकर बिलकुल भी पता नहीं किया जा सकता कि वे मादा हैं या नर।

नवजात बड़ी मेहनत से अण्डे को फोड़कर, डेढ़ से दो फुट की गहराई को पार कर सतह पर आते हैं। वे बहुत ही फुर्तीले होते हैं। रात में समुद्र तट की ओर का क्षितिज काफी चमकीला होता है। यह चमक उनकी दिशा का निर्धारण करती है। वे तेज़ी से उसकी ओर बढ़ चलते हैं और लहरों के साथ समुद्र में समा जाते हैं। कहते हैं कि पैदा होने के बाद तट पर उनकी इस चाल के दौरान ही उनके अन्दर कुछ बस जाता है। कुछ रसायन या फिर कुछ और - इनमें से जो मादा होंगी वे तीस-चालीस साल बाद परिपक्व होकर अण्डे देने के लिए वापस इसी जगह लौटेंगी। नवजात नर उड़ीसा के समुद्र में तो आएँगे लेकिन वापस धरती पर कभी नहीं उतरेंगे।

इसी बीच जो नवजात समुद्र की बजाय यहाँ-वहाँ होते हैं, कार्यकर्ता उन्हें पकड़ कर पानी के पास छोड़ देते हैं। कब पौ फट जाती है पता ही नहीं चलता। हम थके-हारे वापस गाँव की ओर चल पड़ते हैं लेकिन अत्यन्त सन्तुष्टि के एक भाव के साथ।

दीपक वर्मा: 'हरकारा मीडिया'। शिक्षा सम्बन्धी मुद्दों पर फिल्में बनाने में रुचि। इनके द्वारा निर्मित फिल्म 'टीचर्स जर्नी' अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित हुई।'संदर्भ' पत्रिका के संस्थापक सम्पादकीय समूह का हिस्सा रहे हैं। दिल्ली में रहते हैं।